Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2018 GISRRJ | Volume 1 | Issue 1 | ISSN : 2582-0095

# बिहार के क्षेत्रिय दल बनाम राष्ट्रीय दल

**डॉ० शैलेन्द्र कुमार**
**माध्यमिक शिक्षक (सामाजिक विज्ञान)**
**राजकीयकृत उच्च विद्यालय मई, हिलसा, नालंदा**

**शोध सार** – राष्ट्रीय राजनीतिक दलों से उपजे असंतोष के परिणाम के रुप में भातरीय राजनीति में क्षेत्रीय दल आए और आज उनका जनाधार मजबूत और व्यापाक हो गया है। वर्ष 1889 में नौवीं लोकसभा के लिए हुए चुनाव के बाद पहली बार यह परिपाटी टूटी, जब राजीव गाँधी के अगुवाई में कांग्रेस ने 200 के आकड़े को नहीं छू पाई। क्षेत्रीय दलों की सफलता का मूल आधार शक्तिशाली नेतृत्व रहा है। वैसे इस संदर्भ में यह कहना भी गलत नहीं होगा कि स्थानीय मुद्दे एवं उचित नेतृत्व ही राज्य स्तरीय दलों की सफलता का आधार रहा है।

**मुख्य शब्द** – क्षेत्रीय राजनीतिक दल, राष्ट्रीय दल, बहुदलीय व्यवस्था, प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति, राजनीतिक संरचना, केंद्र – राज्य सरकारें, लोकप्रिय नेता, राजनीतिक ध्रुवीकरण एवं वंशवाद।

---

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही भारतीय राजनीतिक पद्धति के अन्तर्गत बहुदलीय व्यवस्था कायम हुई इसमें भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस (काँग्रेस) अन्य दलों की तुलना में काफी शक्तिशाली एवं प्रभावशाली थी। केन्द्रीय स्तर से लेकर राज्यों तक इस दल का शासन लगभग 1967 तक कायम रहा। प्रसिद्ध भारतीय विद्वान रजनी कोठारी ने इसे एक दलीय प्रभुत्व के रूप में उपस्थित किया है।[1] इस रूप में यह एक दलीय शासन से भिन्न हो जाता है। लेकिन अन्य दल भी स्थानीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर अस्तित्व में कायम थे। इनमें एकमात्र काँग्रेस पार्टी को लगभग सभी राज्यों में आम लोगों का समर्थन, कमोवेश प्राप्त था । एक दल के प्रभुत्वशाली इस व्यवस्था ने बहुदलीय व्यवस्था की नर्सरी के रूप में काम किया। इसमें सरकार और विपक्ष, दोनों की भूमिकाओं में काँग्रेस के ही विभिन्न गुट सक्रिय रहते थे। विचारधारात्मक ध्रुवीकरण बहुत कम थे और जो थे वे भी राजनीति के हाशिये पर पड़े थे। हाशियों के बीच के विशाल राजनीतिक दायरे में लगभग हर मुकाम पर काँग्रेस का वर्चस्व था। विभिन्न हित उसके जरिये ही मुखरित होते थे। काँग्रेस का यह विविधतामूलक चरित्र स्थूल रूप से भरोसा देता था कि उसका समर्थन–आधार समाज के विभिन्न वर्गों में समान रूप में बंटा हुआ है।[2]

1970 वाली दशक के उत्तरार्द्ध में भारतीय दलीय पद्धति में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन का काल प्रारंभ हुआ। जनता पार्टी के रूप में विभिन्न दलों का गठजोड़ 1977–79 एवं पुनः उनमें विखराव के अलावा भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस 1977–78

में विभाजन के परिणामस्वरूप राजनीतिक दलों की संरचना में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। भारतीय साम्यवादी दल एवं भारतीय साम्यवादी दल 'मार्क्सवादी' को छोड़कर 1960 एवं 1970 में कार्यरत किसी भी राजनीतिक दल का मूलस्वरूप कायम नहीं रहा। इनमें से कुछ दलों का अस्तित्व ही नहीं रह गया। जैसे–स्वतन्त्र पार्टी, समाजवादी पार्टी (पी.एस.पी.) और आई.एन.सी. (ओ) जो 1969 ई॰ में काँग्रेस के विभाजन के बाद उत्पन्न हुआ था। जनसंघ भारतीय जनता पार्टी के रूप में, तो बी.के.डी. बी.एल.डी. के नाम से सामने आया। सत्ताधारी भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस ने भी अपना नाम परिमार्जित कर भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस (आई) के नाम से जाना जाने लगा। जनता पार्टी के विघटन के बाद नवीन रूप में जनता पार्टी कायम रहा और आई.एन.सी. (एस) जो 1978 में भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के विघटन के बाद उत्पन्न हुआ था उसमें अन्य दलों के समूह आकर मिल गए। इस बीच अनेक राज्यों में कार्यरत राजनीतिक दल किसी–न–किसी रूप में अपना अस्तित्व कायम रखने में सफल रहें। जबकि कुछ राज्यों में नवीन राज्य स्तरीय (क्षेत्रीय दल) अस्तित्व में आ गए। इस प्रकार के परिवर्तन मूलत: सम्पत्तिशाली वर्गों के मध्य सामाजिक आर्थिक परिवर्तनों के परिणाम माने जा सकते हैं।[3]

इस अवधि में दलीय–राजनीतिक संरचना के अन्तर्गत प्रतिस्पर्धात्मक प्रवृत्ति में तुलनात्मक दृष्टि से वृद्धि हुई। यह भारतीय दलीय पद्धति की भावी प्रकृति का द्योतक था जो संसदीय जनतंत्र के अन्तर्गत विकसित होता है। इसके फलस्वरूप भारतीय दलीय राजनीतिक संरचना की प्रक्रिया अधिक जटिल एवं कुछ हद तक सुपरिवर्तनशील रूप में सामने आया। इसका मूल कारण भारत जैसे विशाल जनतान्त्रिक संसदीय व्यवस्था में बहुराष्ट्रीय समाज को होना माना जा सकता है।[4] किसी भी विकासशील समाज में सामाजिक संरचना दलीय बहुलता के विकास में सहायक होता है। यह बात भारत में भी लागू होता है जो अंतत: प्रतिस्पर्धात्मक बहुदलीय पद्धत्ति के लिए उत्तरदायी माना जा सकता है। लेकिन प्रतिस्पर्धात्मक बहुदलीय पद्धति के लिए प्रकार्यात्मक आवश्यकताएं भी होती है। ये आवश्यकताएं इसके विकास एवं क्रियाशीलता के लिए अनिवार्य होती है।

भारत में प्रतिस्पर्धात्मक बहुदलीय पद्धत्ति क्षेत्रीय स्तर पर एक दलीय व्यवस्था के अंतर्गत क्षेत्रीय दलों के विकास का परिणाम माना जा सकता है। विपक्षी दलों का क्षेत्रीय स्तर पर अभ्युदय के लिए सामाजिक–आर्थिक, सांस्कृतिक और विभिन्न क्षेत्रों की राजनीतिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी होती है जो प्रजातिय–राष्ट्रीय समूहों का परिणाम होता है। भारत के संदर्भ में यह और भी महत्त्वपूर्ण बन जाता है। इसका अर्थ होता है कि यदि विपक्षी दल चुनावी सफलता प्राप्त करने की स्थिति में आ जाता है तो वह कुछ खास राज्यों या किसी राज्य विशेष तक ही सीमित होता है। यह बात राष्ट्रीय और राज्यों में कार्यरत दलों दोनों पर ही लागू होता है।[5]

विभिन्न राज्यों में क्षेत्रीय दलों का उद्भव एक महत्वपूर्ण राजनीतिक विकास था। इन क्षेत्रीय दलों के मूलत: दो उद्देश्य थे। इनकी चुनावी लक्ष्य अपने–अपने राज्यों में काँग्रेस को पराजित करना था। ये सभी दल या नेता केन्द्र–राज्य सम्बन्धों से असन्तुष्ट थे। वे राज्यों के लिए अलग–अलग प्रकार की स्वायत्तता की मांग कर रहे थे।[6] बीजू पटनायक द्वारा राज्य के लिए 'वितीय स्वायत्तता की माँग प्रारंभ की गयी थी। वे एक नवीन प्रकार की संघीय व्यवस्था के

समर्थक थे जिसमें संघ सरकार की शक्तियाँ सीमित हों और राज्यों को अधिकतम स्वायत्तता प्राप्त हो। सिर्फ प्रतिरक्षा, विदेशी नीति और संचार संघ सरकार के अधीन हो और बाकी सारे अधिकार राज्यों को प्राप्त हों। बीजू पटनायक के इस विचार से असम गण परिषद के प्रफुल्ल कुमार महंता पूर्णत: सहमत थे। जबकि अकाली दल आनन्दपुर साहब प्रस्ताव के अन्तर्गत पंजाब के लिए अधिकतम अधिकार की मांग कर रहा था। नेशनल कांफ्रेंस संविधान के अनुच्छेद 370 के प्रति अपनी प्रतिबद्धता रखता था।

गौरतलब है कि विभिन्न राज्यों के क्षेत्रीय दल इस प्रकार क्षेत्रीयता को बढ़ावा दे रहे थे और ढीला-ढाला संघ की बात कर रहे थे। जबकि क्षेत्रीयता विरोधी दलों के द्वारा इसे देश के लिए घातक माना जा रहा था। वे सिर्फ राज्यों को कुछ और वित्तीय शक्तियाँ देने के पक्ष में थे। लेकिन इस सबके बावजूद इतना तो मानना ही पड़ेगा कि इस दौरान क्षेत्रीय दलों के उभार ने विविधता की आवाज को थोड़ा बहुत बचाए रखा और जैसा कि योगेन्द्र यादव लिखते हैं - **'लोकतंत्र द्वारा अपनायी जानेवाली आत्मशोधन प्रणाली में लोगों की आस्था भी बनी रही।'**[7] दरअसल भारतीय संघीय व्यवस्था में क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की महत्वपूर्ण भूमिका है और उनकी सकारात्मक भूमिका की तर्कसंगत व्याख्या किया जाना आज के बदलते परिवेश में लाजिमी भी है। हाल के वर्षों में क्षेत्रीय दलों के बढ़ते उभार का मूल्यांकन करने पर यह धारणा गलत साबित हुई है कि क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के सत्ता में आने से राष्ट्रीय अखण्डता भंग हुई है। यदि ऐसा होता तो तथाकथित राष्ट्रीय दल काँग्रेस या भाजपा, डी.एम.के., अन्ना डी.एम.के., अकाली दल, नेशनल काँफ्रेंस, त्रिपुरा उपजाति युवा समिति, झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, जनता दल (यूनाइटेड), राष्ट्रीय जनता दल, लोक जनशक्ति पार्टी, जैसे प्रादेशिक दलों से समय-समय पर गठबन्धन न करती।

क्षेत्रीय राजनीतिक दलों के अस्तित्व के कारण ही भारतीय संविधान के संघात्मक प्रावधानों के क्रियान्वयन का सफल परीक्षण हुआ है, केन्द्र की एक दलीय सरकार की निरंकुशता पर अवरोध लगाने का रचनात्मक कार्य सम्पन्न हुआ है, राज्यों की अस्मिता तथा राज्यों के अधिकार की आवाज बुलन्द कर राज्यों की संविधान-प्रदत्त स्वायत्तता की रक्षा की जा सकी है।[8] क्षेत्रीय दलों के कारण अनेक राज्यों में प्रतियोगी दल प्रणाली या द्विदलीय व्यवस्था का चलन होने लगा जिससे संसदीय व्यवस्था का संचालन आसान हुआ है और सबसे महत्वपूर्ण रचनात्मक भूमिका अपने राज्य विशेष के लिए अधिकतम आर्थिक सुविधाओं की मांग की गई जिससे प्रादेशिक विषमता को दूर कर भारत के सर्वांगीण विकास को गति मिली है। अनेक ऐसी योजनाओं और कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करना पड़ा जो शायद क्षेत्रीय पार्टियों के दबाव के बिना क्रियान्वित न होते। क्षेत्रीय नेतृत्व ने सत्ता में रहकर अपने दावों को उचित साबित करने के लिए अपने राज्यों के विकास के लिए विशेष प्रयत्न किये हैं। इन राज्यों के विकास से सारे देश को ही लाभ हुआ है। तमिलनाडु, पंजाब, हरियाणा, जम्मू-कश्मीर, पश्चिम बंगाल, आंध्र-प्रदेश और कनार्टक के विकास की गति इसका प्रमाण है।

भारत जैसे विशाल देश में केन्द्रीकरण की सफलता की संभावनाएँ कम है। विभिन्न क्षेत्रों की समस्याएँ, रहन-सहन के ढंग, सामाजिक मान्यताएँ और भौगोलिक यथार्थ इस बात को अनिवार्य बना देते हैं कि उनके साथ अलग-अलग ढंग से विचार किया जाये। यद्यपि, भारतीय संविधान में संघ शासन के रूप को स्वीकारा गया, फिर भी मजबूत केन्द्र की कल्पना की गई थी। यह बात मान ली गयी कि केन्द्र व राज्यों में अलग-अलग दलों की सरकारें बन सकती है और

रह सकती है ।[9] उनमें संवैधानिक प्रश्नों पर यदि विवाद हो तो उसके लिए सर्वोच्च न्यायालय को अधिकार दिया गया। फिर भी केन्द्र तथा राज्यों में विवादों के ऐसे मुद्दे आये जिससे क्षेत्रीय दलों की स्थापना हुई। द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम के शक्ति संचय का कारण केन्द्र और राज्य में हिन्दी भाषा को लेकर विवाद रहे। अकाली दल की शक्ति का आधार 'राज्यों को अधिक स्वायत्तता दी जाने की मांग थीं, नेशनल कॉंफ्रेंस की शक्ति का आधार कश्मीर का पृथक स्वायत् दर्जा बनाये रखने की मांग रही, तेलगूदेशम के अभ्युदय का कारण आंध्र प्रदेश में केन्द्र द्वारा हर तीसरे महीने मुख्यमंत्री बदलने की प्रवृति रही। राष्ट्रीय जनता दल का अभ्युदय भी बिहार में केन्द्र की इसी नीति का होना माना जाता है। एक बार सत्ता में आने के बाद सभी क्षेत्रीय दलों ने केन्द्र विरोधी रूख अपनाया और केन्द्र–राज्य विवादों को जन्म दिया।[10]

क्षेत्रीय दलों की सफलता का मूल आधार शुरू से ही शक्तिशाली नेतृत्व रहा है। वैसे इस संदर्भ में यह कहना भी गलत नहीं होगा कि उचित नेतृत्व ही राज्य स्तरीय दलों की सफलता का आधार रहा है। एक माने में नेता का व्यक्तित्व क्षेत्रीय दलों को शक्तिशाली बनाता है और उन्हें जीवित रखता है।[11] उदाहरणस्वरूप, डी.एम.के. एक ऐसा क्षेत्रीय दल है जो तमिल क्षेत्रीयता को आधार बिन्दु मानकर बढ़ा है। यद्यपि नाम से यह दल क्षेत्रीय नहीं है क्योंकि उनकी दृष्टि से एक समय द्रविड़ संस्कृति सारे भारत में फैली थी, परन्तु केरल भाषी भी जिसका तमिलनाडु से सबसे अधिक सामीप्य है अपने आपको द्रविड़ नहीं मानते और बावजूद इसके कि केरल में तमिल भाषियों की संख्या काफी है, दोनों द्रविड़ पार्टियाँ वहाँ पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकीं। यदि इन क्षेत्रीय दलों का इतिहास देखा जाये तो इनकी सफलता के दो तत्व प्रमुख रहे हैं – पहला, निजी पहचान कायम रखने या इस निमित्त अपने राज्यों के लिए विशेष व्यवहार उपलब्ध कराने का आग्रह तथा दूसरा, एक नेता विरोध की छवि। यद्यपि द्रविड़ कड़गम का उपदेश रामास्वामी नायकर ने दिया था, पर उस कल्पना को राजनीतिक शक्ति का रूप देना अन्नादुरै की विशेषता थी। 1967 के चुनावों के समय वहाँ चुनाव का बड़ा आकर्षण अन्ना का त्यागी तेजस्वी नेतृत्व था जिसने कामराज के नेतृत्व को भी विफल कर दिया। उनकी मृत्यु के बाद उनका दल विभक्त हो गया है और उनके अनुयायी एम.जी. रामचन्द्रन ने भी अन्ना की लोकप्रियता का लाभ उठाने के लिए अपने दल का नाम अन्ना दविड़ मुन्नेत्र कड़गम रखा।[12] पर सभी मानते हैं कि इस समय इस दल का आधार उनका करिश्मायी नेतृत्व ही है।

यह बात अन्य क्षेत्रीय दलों के साथ भी है। बंगाल कॉंग्रेस की धुरी अजय मुखर्जी की लोकप्रियता थी, उत्कल कॉंग्रेस का आधार बीजू पटनायक का व्यक्तित्व था। भारतीय क्रांति दल या लोकदल का आधार चौधरी चरण सिंह की लोकप्रियता ही थी। शेख अब्दुल्ला का नाम ही नेशनल कॉंफ्रेंस को आगे कर सका और डॉ. फारूख अब्दुल्ला का जीत भी कुछ शेख अब्दुल्ला की कीर्ति का परिणाम थी। यद्यपि उसमें कश्मीर घाटी की क्षेत्रीयता व साम्प्रदायिकता भी भागीदार हो गयी। तेलगूदेशम के अभ्युदय में एन.टी.रामाराव की व्यक्तिगत लोकप्रियता कम नहीं थी। उनकी प्रचार शैली तथा जनता की मुख्य आवश्यकताओं पर जोर उन्हें जनता का विश्वास दिला सका। महाराष्ट्र में शिव सेना का आधार स्तम्भ बाल ठाकरे का व्यक्तित्व एवं विचारधारा है। उसी तरह उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी का

आधार स्तम्भ मुलायम सिंह यादव, तथा बहुजन समाज पार्टी का आधार स्तम्भ कांसीराम तथा मायावती है। उसी तरह बंगाल में तृणमूल काँग्रेस का आधार स्तम्भ ममता बनर्जी हैं। ठीक उसी प्रकार बिहार में भी राष्ट्रीय जनता दल का एकल आधार स्तम्भ लालू प्रसाद तथा जनता दल यूनाइटेड का आधार स्तम्भ नीतीश कुमार पर निर्भर है। ये लोग अपने-अपने करिश्यामी व्यक्तित्व एवं विचारधारा से अपने दल को सत्ता के शिखर पर भी महिमामंडित करने में सफल हुए।

क्षेत्रीय दलों का उद्भव जन आन्दोलन से हुआ है। द्रमुक अगर द्रविड़ कड़गम की ब्राह्मण विरोधी राजनीति की उपज है, तो तेलगूदेशम का जन्म काँग्रेसी सरकारों द्वारा तेलगू 'स्वाभिमान' को ठेस पहुंचाने के कारण हुआ और 'विदेशियों के खिलाफ अन्य जातीयतावादी छाप आन्दोलन के कारण असम गण परिषद् अस्तित्व में आयी। वहीं बिहार में राष्ट्रीय जनता दल एवं जनता दल (यू) का जन्म भी कमोवेश इसी आधार पर हुआ। हाल के दशकों में राष्ट्रीय दलों को चुनौती देने वाली ऐसी पार्टियों का अस्तित्व तेजी से उभरता रहा है जो एक, दो या चार-पाँच सीटें जीतती रही है। विश्लेषकों का मत है कि जातियों और स्थानीय मुद्दों के मोर्चे पर संघर्ष करके अपनी नकारात्मक क्षमता के बूते इन दलों ने राष्ट्रीय राजनीतिक दलों के कद्दावर और ताकतवर नेताओं को अपने इलाकों में हाशिये पर धकेल दिया है।[13] 1967 में इस तरह के क्षेत्रीय राजनीतिक दलों की संख्या सिर्फ 20 थी, जबकि अब यह संख्या 40 के आस-पास पहुंचती जा रही है। इस उभार ने निर्दलीय तौर पर चुनाव जीतने वालों का तो अस्तित्व ही संकट में डाल दिया है।

भास्कर दत्त ने **"फ्रैगमेन्टेड लोकसभा : ए केस फॉर इलेक्टोरल इंजीनियरिंग"** अध्ययन में बताया है कि राष्ट्रीय और प्रमुख प्रादेशिक दलों को चुनौती दे रहे क्षेत्रीय दलों के इस उभार का भारतीय जनजीवन में बढ़ते भ्रष्टाचार से क्या गठजोड़ है। दत्त ने चेतावनी दी है कि ऐसी पार्टियों के सहयोग से चलने वाली सरकार पर हमेशा ही स्थानीय दलों को खुश करने वाली नीतियों पर चलने का दबाव रहेगा और वे देश हित के बड़े फैसले नहीं कर पाएंगी। दत्त के मुताबिक चुनाव कानून में बदलाव करके अगर राष्ट्रीय स्तर पर सिर्फ 2.5 प्रतिशत वोट हासिल करने वाले राजनीतिक दलों को मान्यता हो तो उन छोटे दलों की दबाव की राजनीति और सरकार बनाने में पैसे की भूमिका को कम किया जा सकता है।[14]

बिहार की उर्वर भूमि सदा से ही राजनीतिक तपस्वियों की भूमि रही है। आजादी के पूर्व से ही यहाँ के लोगों में राजनीतिक चेतना का विकास हो चुका था।[15] बिहार में क्षेत्रीय राजनीतिक दल के रूप में प्रथम नाम त्रिवेणी संघ का आता है जिसकी स्थापना 30 मई 1933 को शाहाबाद जिले के करगहर में हुई थी। 1969 में कामाख्या नारायण सिंह के नेतृत्व में 'जनता' नामक पार्टी की स्थापना हुई। 1994 में जार्ज फर्नाडीस एवं नीतीश कुमार के नेतृत्व में **'समता पार्टी'** का निर्माण हुआ। 1997 में लालू प्रसाद के नेतृत्व में **'राष्ट्रीय जनता'** दल का गठन हुआ । 1999 के लोक सभा चुनाव के पहले समता पार्टी और जनता दल का विलय हो गया और जनता दल (यूनाईटेड) का गठन हुआ। 1999 में **'बिहार पीपुल्स पार्टी'** नाम से एक पार्टी बनायी गई जिसके नेता आनन्द मोहन सिंह हैं। **'बिहार विकास**

**मंच'** के नाम से पप्पू यादव के नेतृत्व में भी एक दल का गठन हुआ। इस तरह देखते-देखते बिहार में क्षेत्रीय दलों की लम्बी तादाद हो गई।

सन् 2005 से बिहार में क्षेत्रीय दल जनता दल (यूनाईटेड) की सरकार काम कर रही है। लेकिन यहाँ एक बात की ओर ध्यान दिलाना जरूरी है कि नरेन्द्र मोदी नेतृत्व में जिस तरह से राजनीतिक ध्रुवीकरण 2014 के लोकसभा चुनाव में हुआ उससे क्षेत्रीय दल प्रभावित हुए। इस चुनाव में नरेन्द्र मोदी के नेतृत्व में भाजपा को मिली अभूतपूर्व सफलता का सबसे बड़ा असर जनता दल (यू), राष्ट्रीय जनता दल जैसी पार्टियों पर पड़ा है। लोकसभा चुनाव में जद (यू) को घोर पराजय का सामना करना पड़ा। नीतीश कुमार ने हार की नैतिक जिम्मेदारी लेते हुए मुख्यमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया और इसके साथ ही जीतन राम मांझी नए मुख्यमंत्री बन गए। संकीर्ण क्षेत्रीय पार्टियाँ, जो "कैप्रिशस' तत्वों को बढ़ावा दे रही है और अपने-अपने प्रदेशों को अपना वंशवादी जागीर बनाने में संलग्न हैं, वे केन्द्र में अस्थिर सरकार बनवाने के लिए भी दोषी है। इन्ही तत्वों के बढ़ावा के परिणामस्वरूप 1989-2014 तक कोई राष्ट्रीय पार्टी केन्द्र में बहुमत प्राप्त नहीं कर सकी। लोग समझने लगे थे कि क्षेत्रीय पार्टियाँ ही अब केन्द्र में भी शासन करती रहेंगी, लेकिन 2014 के लोकसभा चुनाव में तीन क्षेत्रीय दल ही अपनी पार्टी के सदस्यों की अच्छी संख्या को लोकसभा भेज सके- ए.आई.डीएमके., तमिल मनिला काँग्रेस और बीजू जनता दल। जब राष्ट्रीय दल सम्पूर्ण राष्ट्र की आकांक्षाओं का समरूपी प्रतिनिधित्व करने में असफल रहते हैं तो क्षेत्रीय दल क्षेत्रीय आकांक्षाओं को राष्ट्रीय आकांक्षाओं के समानांतर स्थापित करने की कोशिश करते हैं।

**सन्दर्भ ग्रंथ:-**

1. रजनी कोठारी "द काँग्रेस 'सिस्टम' इन इंडिया", एशियन सर्वे, वाल्यूम।V, न.12 दिसम्बर 1964
2. योगेन्द्र यादव "कायापलट की कहानी! नया प्रयोग, नयी संभावनाएँ, नये अंदेशे" संकलित, अभय कुमार दुबे (सं.) लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन, सी.एस.डी.एस, नई दिल्ली, 2002ए पृ. 43
3. ऐरिक कोमारोव, "इभूलूशन ऑफ पालिटिकल पार्टीज" इन टी.पी.शंकर कुट्टीनायर (सं.) मार्डन इंडिया: सोसाइटी एण्ड पॉलिटिक्स इन ट्रान्जीशन, इंटर इंडिया पब्लिकेशन, नयी दिल्ली, 1996, पृ. 19
4. उपरोक्त, पृ. 26
5. ऐरिक कोमारोव, टू टेन्डेन्सिज ऑफ इथानों-नेशनल डेवलपमेंट एण्ड ग्रोथ ऑफ मल्टी पार्टी सिस्टम इन इंडिया, इन वी.एम.बचल (सं) पीपुल्स मैडेट, पुणे, 1992, पृ.23-24
6. एस.एल.सिकरी, इंडियन गवमेंट एण्ड पॉलिटिक्स, कल्याणी पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, 1989, पृ. 63-64
7. योगेन्द्र यादव, पूर्वोक्त, पृ. 52
8. रजनी कोठारी , भारत में राजनीति : कल और आज (प्रस्तुति और संपादन : अभय कुमार दुबे ), वाणी प्रकाशन, डी.एस.डी.एस, नई दिल्ली, 2005, पृ. 203-204
9. उपरोक्त, पृ. 208
10. उपरोक्त, पृ. 236-237

11. स्टेनली ए . कोचनेक, द  कांग्रेस पार्टी इन इंडिया, प्रिसेटन यूनिवर्सिटी प्रेस , प्रिसंटन, 1965, पृ. 38

12. द पॉयनियर, 05 फरवरी 1995 पृ. 01

13. भाम्भरी, चन्द्र प्रकाश, पॉलिटिक्स इन इंडिया 1991-1992 शिप्रा पब्लिकेशन, 1992, पृ. 118

14. उपरोक्त,पृ. 143

15. अरुण सिन्हा , नीतीश कुमार और उभरता बिहार , प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2013, पृ. 311-321